चतुर्थ अध्याय

आसाम का अंकिया नाट ।।

चतुर्थ अध्याय ।

आसाम के अंकिया नाट

आमुख ----- प्रस्तुत अध्याय आसाम के अंकिया नाट के विवेचन से संबंधित है । इन नाटकों की भाषा ब्रजबुली है जिस में मैथिली भाषा का पुट अधिक पाया जाता है । इस तथ्य से मैथिली भाषा की व्यापकता सिध्द होती है, नाट्य साहित्य की नहीं : वैसे इन नाटकों पर कुछ अंशों में कीर्तनियां शैली का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है । दूसरी बात यह भी है कि ये अंकिया नाट एक ही शैली पर विरचित हैं । पौराणिक कथानकों के यथावत् चयन से इन में विभिन्नता भी नहीं पायी जाती और ये परिमाण में भी विपुल हैं । अतएव उक्त कारणों तथा अनावश्यक विस्तार-भय से प्रस्तुत अध्याय में अंकिया नाट के स्वकीय अध्ययन-अनुशीलन-एवं विभिन्न विद्वानों के आधार पर केवल उनके स्वरूप और विशेषताओं पर ही विचार उपस्थित किया जा रहा है ।

आसाम की नाट्य परम्परा विषयवस्तु और प्रेरणा के दृष्टिकोण से उत्तर भारत के मध्यकालीन वैष्णव भक्ति-आन्दोलन की देन है । इस युग में यहां मैथिली मिश्रित भाषा में जो अंकिया नाटक लिखे गये, उनका नाटकीय दृष्टिकोण से अध्ययन करने से पूर्व यहां उस पूर्वकालीन तथा समसामयिक पृष्ठ भूमि पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक है । क्योंकि जैसा परवर्ती विवरण में हम देखेंगे कि वह इन पुष्कल नाट्य सामग्री की रचना की एक सुदृढ़ आधार भूमि के रूप में प्रतिष्ठित है ।

पूर्व पीठिका ------ आसामी साहित्य में सोलहवीं शताब्दी का समय साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं बौध्दिक नव-जागरण का काल माना जाता है । इस काल के साहित्यिक मनीषियोंने अपनी विद्वता, निष्ठा तथा दक्षता के आधार पर चली आती हुई परंपरा में एक ऐसा मोड़ उपस्थित किया जिससे आधुनिक युग भी उद्वेलित होता आया है । सोलहवीं शताब्दी एवं उसके पश्चात् राज्याश्रय तथा लोकाश्रय प्राप्त कर

२

आसामी साहित्य अपने विविध रूपों में पल्लवित और पुष्पित होता रहा। आहोम राजाओं के पूर्व यहां के साहित्यिक इतिहास का सुस्पष्ट चित्र आज हमें उपलब्ध नहीं है। इन राजाओं में ऐतिहासिक भावनाएं थीं, अत: ये अपने राज्य-काल की मुख्य घटनाओं की पंजी रखा करते थे। इस समय में गद्य भाग प्राय: अछूता ही रहा।[1] आहोम राजाओंने साहित्यिक अभिरूचि जागृत करने के लिये अपने आश्रित विद्वानों से काव्य के विविध रूपों पर रचनाएं प्रस्तुत करवायीं। इन्होंने मुसलमानी आक्रमणों का साहस पूर्वक सामना करते हुए अपने राज्य में पूर्ण शांति की स्थापना का अथक प्रयास किया, किन्तु संस्कृति में भिन्न होने के कारण इन्हें पूरी सफलता नहीं मिल पायी। स्थानीय शासक भूयास इनके विरूध्ध सतत् षड्यंत्र किया करते थे ; फलत: राज्य अनेक टुकड़ों में विभक्त हो गया था।

सोलहवीं शती के प्रारंभ में विश्वसिंहने इन अशांतियों से लाभ उठाकर कामरूप में अपने शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इनके पुत्र नरनारायणसिंहने बड़ी बुध्धिमत्ता के साथ शासन का कार्य भार संभाला। ये स्वयं विद्वान् और साहित्य प्रेमी थे, अत: इनके दरबार में विद्वानों और कवियों का जमघट रहने लगा। आसामी नाट्य-साहित्य के पुरष्कर्ता शंकरदेव इन्हीं के दरबार की शोभा में अभिवृध्धि कर रहे थे।[2]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि आसाम की नाट्य-परंपरा विषय वस्तु और प्रेरणा के दृष्टिकोण से उत्तर भारत के मध्यकालीन वैष्णव भक्ति-आन्दोलन की देन है। आसामी नाट्य-साहित्य के आरंभिक पुरस्कर्ता, जिनसे परवर्ती काल में अंकिया नाटकों की परम्परा विकसित हुई है, यहां के सुप्रसिध्ध संत शंकरदेव हैं। यह उल्लेखनीय है कि जिन दिनों

---

१. आस्पेक्टस् ओफ अर्ली आसामीज लिट्. पृ.१६

२. जनरल ओफ द आसाम रिसर्च सोसायटी - अप्रैल १६३३

३

उत्तर भारत के हतप्रभ एवं निराश जन-जीवन में सांस्कृतिक चेतना का संचार करता हुआ भक्ति आन्दोलन देश के एक कोने से दूसरे कोने तक विस्तार पाता जा रहा था, उन दिनों आसाम राजनीतिक दृष्टि से भारत से असम्बध्द हो चुका था। किन्तु शंकरदेव के महान् व्यक्तित्वने अपने प्रयासों द्वारा इस प्रदेश की भारत के साथ सांस्कृतिक अभिन्नता स्थापित की। शंकरदेव द्वारा यह कार्य उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलन के प्रवर्तन के लगभग सौ वर्ष पश्चात् हुआ। उनके व्यक्तित्व तथा सम सामयिक ऐतिहासिक परिस्थिति का सम्यक् मूल्यांकन करते हुए डॉ. मदन गोपाल गुप्तने अपने शोध प्रबंध में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया है वह संक्षेप में इसप्रकार है -----

सांस्कृतिक महत्त्व के दृष्टिकोण से यह उल्लेखनीय है कि मध्यकाल में आहोम शासकों द्वारा विजित होने के कारण आसाम अभारतीय संस्कृति का क्षेत्र बन चुका था और इतना ही नहीं, कुमार भास्कर के समय में उसकी भारतीय संस्कृति के साथ सम्बध्दता व्यावहारिक रूप में विस्मृत-सी हो चुकी थी; किन्तु इस युग में जन्म लेने वाले शंकरदेव (जन्म सन् १४४६ ई.) को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने भारत के सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन की एकता आसाम के साथ पुन: स्थापित की। वे कृष्ण-भक्त थे, जिन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण करने के पश्चात् भारतीय संस्कृति की मौलिक एकता का अनुभव किया था और इसके पश्चात् से आसाम में स्थान-स्थान पर घूमकर भक्ति का प्रचार करते हुए अपने सम्प्रदाय में राजा-प्रजा सभी को दीक्षित किया।[१] अतएव इसमें सन्देह नहीं कि आसाम के स्थानीय नाट्य-रूपों की परंपरा में कीर्तनियां शैली, रासलीला आदि का प्रभाव उपर्युक्त सम्बध्दता के ही कारण संभव हुआ होगा।

जिन दिनों उपरि निर्दिष्ट भक्ति-आन्दोलन अत्यन्त व्यापक स्वरूप को प्राप्तकर चुका था, उन दिनों संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् शंकरदेव

----

१. डा. मदन गोपाल गुप्त --- मध्यकालीन हिन्दी काव्य में प्रतिबिंबित भारतीय संस्कृति और समाज - तृतीय अध्याय।

४

विभिन्न तीर्थ-स्थलों की यात्रा कर रहे थे । उनके हृदय - पटल पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और वे वज्रयानियों एवं सहजयानियों के कुप्रभाव तथा कर्मकाण्ड के विकृत रूप के कारण अंधकार के गर्त में जाते हुए समाज की रक्षा के लिये कृत संकल्प भी हुए । अतएव तीर्थ-यात्रा से वापस आने पर इन्होंने आसाम में परंपरा से प्रचलित वैष्णव धर्म के आधार पर श्रीमद् भागवत के अनुसार कृष्ण-भक्ति का उपदेश देना प्रारंभ किया । अत: इस स्थल पर प्राचीन परंपरा का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है ।

सरत्चन्द्र गोस्वामीने अपने एक लेख में इसका परिचय इस प्रकार दिया है [१] -----

कामरूप के वैष्णव धर्म की विशेषता उसकी एक संस्था में निहित है जिसे 'सत्र' कहते हैं । यह शब्द प्राय: 'सद्' से बना है । यह 'सत्र' जन-समूहों के शैक्षाणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक केन्द्र हुआ करता था । भक्तगण अपने अवकाश प्राप्त जीवन को भगवद् भक्ति के साथ ही हाथी दांत, सींग, वेतस, बांस आदि के सामान बनाने, ललित कला के विकास एवं हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतिलिपि करने में व्यतीत करते थे ।

प्रत्येक 'सत्र' के पास निजी भौमिक सम्पत्ति भी रहती थी । इस संस्था के मुख्य चार विभाग होते थे जिनके नाम क्रमश: इस प्रकार हैं ----- अधिकार - संस्था का प्रधान व्यक्ति, देका या उपाधिकार, भक्त और शिष्य । प्रथम तीन एक साथ एक ही स्थान पर रहा करते थे किन्तु शिष्यों की अलग व्यवस्था होती थी । इनके लिये पृथक् कुटी में पृथक्-पृथक् कक्षा की व्यवस्था की जाती थी, जिससे ये शांति से स्वाध्याय कर सकें । इन लोगों का जीवन प्रात:काल से संध्या तक विविध कार्यक्रमों में ही व्यस्त रहा करता था । इस संस्था के प्रत्येक सदस्य के लिये व्यक्तिगत प्रार्थना के अतिरिक्त प्रात: ,

----

१. जनरल ओफ द आसाम रिसर्च सोसायटी - जुलाई १९३३

५

मध्यान्ह एवं सायंकालीन नामकीर्तन या सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित होना अनिवार्य था । भोजन-व्यवस्था, द्रव्य-व्यवस्था, पशु-व्यवस्था, अतिथि सत्कार-व्यवस्था आदि प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था के लिये विभिन्न व्यवस्थापकों की नियुक्ति होती थी जो भक्त से चुने जाते थे । देका या उपाधिकार की नियुक्ति किसी उच्च और सांस्कारिक गोस्वामी के परिवार के व्यक्तियों में से ही की जाती थी । प्राचीन समय में यह एक प्रथा-सी बन गयी थी कि प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों को 'सत्र' में दे आते थे, जहां पर प्रौढ़ भक्तों के अधीन उन बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और उनके व्यक्तित्व एवं जीवन का विकास होता था ।

वैष्णव धर्म का दूसरा मुख्य केन्द्र नामघर अथवा सामूहिक प्रार्थना घर था । आसाम के प्रत्येक गांव में एक नामघर होता ही था जहां पर संध्या समय आबाल वृध्द एकत्रित होकर प्रार्थना और विविध धार्मिक कर्मों को सम्पादित किया करते थे और साथ ही सामाजिक समस्याओं एवं ग्राम-विकास की योजनाओं पर भी सामूहिक रूप से विचार विमर्श हुआ करता था । 'सत्र' में तैयार किये गये विभिन्न पुराणों की प्रतिलिपि यहां विद्यमान रहती थी जिसका वाचन कथा-वाचक या पाठक किया करते थे । नामघर की महत्ता इसलिये भी थी कि इस से रंगमंच और संगीत-भवन के उद्देश्य की पूर्ति होती थी । अभिनय कला को यहां पर धर्म का एक आवश्यक अंग माना जाता था । इस नामघर में शैव, शाक्त और वैष्णव सभी समानरूप से भाग लेते और अभिनय-कला को प्रदर्शित करते थे । सहवास के कारण इन विभिन्न मतावलम्बियों के बीच किसी प्रकार के विरोध या कट्टरता का भाव नहीं था ।

उपर्युक्त विवरण से प्रकट है कि शंकरदेव के पूर्व आसाम में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन का संचालन धार्मिक संस्थाओं द्वारा हुआ करता था और यहां की अभिनय कला भी उक्त संस्थाओं की प्रवृत्तियों द्वारा ही संचालित एवं संयोजित हुआ करती थी ।

६

सोलहवीं शताब्दी में शंकरदेव के इस क्षेत्र में पदार्पण से वैष्णव धर्म का एक नया अध्याय प्रारंभ हो जाता है, जिसका कि निर्देश पूर्ववर्ती पृष्ठों में किया जा चुका है। इन्होंने अपने विवेकशील पांडित्य के आधार पर समयानुकूल परिष्करण के साथ उपर्युक्त दोनों संस्थाओं में पुनर्जीवन का संचार किया। तत्कालीन समाज में वामाचारियों एवं कर्मकांडियों के फैले हुए प्रभाव को लक्ष्य कर, उससे मुक्ति पाने के लिये इन्होंने भक्ति के सिध्धान्त को सरल, सुगम और वर्ण -निरपेक्षता का रूप दिया। फिर भी जब इन्हें अनुभव हुआ कि जन-हृदय में पूर्व संस्कार ज्यों के त्यों बने हुए हैं तो इन्होंने कीर्तन, पद, पुराणों के अनुवाद आदि रचनात्मक कार्यों के साथ एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी प्रारंभ किया।

द्वितीय अध्याय में यह लक्ष्य किया जा चुका है कि दृश्य काव्य में प्रत्यक्षानुभूति के साथ ही श्राव्यत्व गुण भी विद्यमान रहता है। शंकरदेव इस तथ्य से अपरिचित नहीं थे कि चाक्षुष प्रत्यक्ष के द्वारा हृदय-पटल पर अंकित चित्र का प्रभाव जितना चिरस्थायी होता है, उस अनुपात में उपदेश और अध्ययन का प्रभाव अत्यन्त क्षीण सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष-दर्शन से मानस-पटल पर उसका रूप-गुण अंकित हो जाता है और जिसका पुनर्स्मरण भी शीघ्र ही किया जा सकता है। अतएव शंकरदेवने अपने सिध्धान्त के प्रचार के लिये नाट्य-रूपों को अपनाया। ईश्वर के गुण-कर्मों को कृत्रिम प्रसाधनों के उपयोग एवं अभिनय कला के माध्यम से जन-समूहों में प्रदर्शित करने से भक्ति के प्रचार के साथ ही बद्धमूल कुप्रभावों को विनष्ट करने का लक्ष्य भी अनायास ही सिद्ध हो जाता है। यही कारण है कि शंकरदेवने नाट्य-रूपों को अपनाकर एक नवीन साहित्यिक परंपरा का सूत्रपात किया।

इनके पूर्व नाटक लिखे जाने का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। ये बड़े ही कर्मठ और क्रियाशील थे। कहा जाता है कि शंकरदेव स्वयं अपने हाथों

७

से विभिन्न दृश्यों को सजाते थे और उस सजावट के लिये उपयुक्त रंगीन पर्दे या विविध चित्रकारी किया करते थे। अभिनय में भाग लेकर अन्य लोगों को प्रोत्साहित करना इनका नैमित्तिक धर्म बन गया था। ये स्वयं **वायन** (ढोल बजानेवाला) बनते थे और इनके भाई गायन (गानेवाला) का अभिनय करते थे।[१]

शंकरदेवने अपने सिध्धान्त को सर्वगम्य और व्यापक प्रसार के लिये अपनी रचनाएं उस समय की प्रचलित **जन-भाषा** में ही प्रस्तुत कीं, जो उनके लिये स्वाभाविक ही था। अत: अशिक्षित समाज में भी संस्कृत के ज्ञान-भंडार को सुगम बनाने के उद्देश्य से, संस्कृत के धुरंधर पंडित होते हुए भी, इन्होंने जन-भाषा को अपनाया।[२]

इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अपनी तीर्थ-यात्रा की अवधि में ये विद्यापति की 'देसिल वयना' की मधुरता और लोकप्रियता का अनुभव कर चुके होंगे, जिससे प्रभावित होकर इन्होंने भी उसी भाषा में रचना प्रस्तुत की होगी अतएव अपने नाट्य-रूपों में इन्होंने भाषा के साथ ही प्रचलित जन-नाट्य-रूपों को भी ग्रहण किया। किन्तु संस्कृत के विद्वान् होने के कारण उनके अवचेतन मन में शास्त्रीय भाषा-शैली के प्रति मोह अथवा बद्धमूल संस्कार अवश्य ही बना हुआ था, जो उनके नाटकों के रूप एवं भाषा से स्पष्ट है। प्रो.बी.के.बरूआ[3] का कथन है कि अंकिया नाट कथा-वस्तु के विन्यास एवं शैली में अधिकांशत: शास्त्रीय शैली का अनुवर्ती है। अतएव विभिन्न प्रभावों के अनुसंधान के लिये प्रस्तुत प्रसंग पर अंकिया नाटकों के स्वरूप के साथ ही उनके पूर्व प्रचलित आसाम के जन-नाट्य रूपों पर संक्षेप में विचार कर लेना प्रासंगिक ही होगा।

---

१. जे.ए.आर.एस. - जुलाई १६३३

२. आस्पेक्ट्स् ओफ अर्ली आसामीज लिट्. - पृ.६६

3. It should be noted that Ankiya Natas were patterned after sanskrit models and this not merely in plot constructions but also in subject-matter. This explains the presence of sanskrit influence in them. Besides, inclusion of Nandi slokas in Sanskrit, the Ankia Natas abound in many Sanskrit and Sanskritised expressions and sentences.
----- (As-pects of Early Assamese-Literature P.127)

८

आसाम के जननाट्य-रूप तथा अंकिया नाट ------

आसाम में सामान्यतया अभिनय अथवा अभिव्यक्तिकरण के लिये 'भावना' शब्द का प्रयोग होता है । यह शब्द संभवत: 'भाव' से बना है जिसका अर्थ होता है दिखावा या अनुकरण और इसका संबंध स्पष्टत: हर्ष-शोकादि के व्यभिचारी भावों से रहा करता है । व्यावसायिक 'ढुलिया' के अश्लील एवं असभ्य प्रदर्शनों को भी 'भाव' कहा जाता है । इस प्रकार के प्रदर्शन में अधिकांशत: हास्य, बीभत्स एवं अश्लील श्रृंगार के भाव ही व्यभिचरित होते हैं ।[१]

शनै: शनै: इस 'ढुलिया' की मंडली का प्रदर्शन लोकप्रिय बनता गया और विशेष सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों पर भी इन्हें आमंत्रित किया जानें लगा जिस से इस प्रदर्शन में परिष्करण भी प्रारंभ हो गया । इस मंडली में वही व्यक्ति सम्मिलित हो सकता था जो ढोल बजाते, मूक अभिनय करने, छद्म नृत्य करने तथा नट के समान रस्सा पर चलने में निपुण हुआ करता था । इस 'ढुलिया' की मंडली के प्रदर्शन के मुख्य रूप से चार प्रकार होते हैं -------

(१) बांसुरी, झांझ, मजीरा और ढोलक के साथ संगीत ।

(२) छद्म वेष में रस्सी पर चलने का प्रदर्शन ।

(३) संगीत-नृत्य के साथ छद्म नृत्य ।

(४) नृत्य-संगीत के साथ हास्यप्रद घटनाओं का अभिनय ।[२]

कालान्तर में इस प्रदर्शन में अनेक परिवर्तन हुए, जिसके परिणाम स्वरूप इससे अपेक्षाकृत अधिक संस्कृत दो रूपों का विकास हुआ ; जिसे 'भावरिया' और 'ओजापाली' प्रदर्शन कहते हैं । ओजापाली के मुख्य दो अंग हैं --- समूह गान (Chorus) और नृत्य ।

----

१. अंकावली (सं. प्रो. कालिराम मेधी) - पृ. ३

२. वही - पृ. ५

६

इस प्रदर्शन में चार-पांच व्यक्ति विभिन्न प्रकार के गीत गाते हैं। प्रधान गायक 'ओजा' कहलाता है और शेष व्यक्तियों को 'पाली' की संज्ञा दी जाती है। गीत के पद को 'ओजा' आगे-आगे कहता है और पश्चात् सभी सहायक उसे दुहराते हैं। बीच-बीच में कभी-कभी कथोपकथन भी रहा करता है जिसके माध्यम से ओजा कथा-वस्तु एवं उसके तारतम्य का ज्ञान सामाजिकों को कराता रहता है। नृत्य के साथ विभिन्न मुद्राओं का सुस्पष्ट अभिव्यक्तिकरण इस प्रदर्शन का मुख्य अंग है। इस में इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है कि ईश्वर और नृत्य में अभिन्न संबंध है। जब इस मंडली के अभिनेता हस्त-मुद्राओं के द्वारा गीतों के भावों को प्रदर्शित कर उसे सामाजिकों तक पहुंचाते हैं तो उस प्रदर्शन में पूर्ण नाटकीयता विद्यमान रहती है और उसका प्रभाव भी नाटक के सदृश हुआ करता है।[१]

ओजापाली का सम्पूर्ण रूप धार्मिकता की भावना से परिपूर्ण रहता है। इसी ओजापाली प्रदर्शन से समयानुकूल परिवर्तन और परिष्कार के साथ अंकिया नाट का विकास हुआ।

आसाम में नाटक के लिये साधारणतया 'अंक' शब्द का प्रयोग होता रहा है। वैसे रूपक के दस भेदों में अंक भी एक है, किन्तु आसामी अंक में संस्कृत के अंक के सदृश एक ही अंक की योजना के अतिरिक्त और किसी में भी समानता नहीं पायी जाती। यद्यपि आसामी अंक में संस्कृत नाटकों के समान अनेक अंकों की योजना एवं प्रासंगिक कथाओं का समावेश नहीं रहता है, फिर भी रचना - विधान में नाटक एवं अंक में अनेक समानताएं पायी जाती हैं जो इस प्रकार हैं [२] -----

----

१. अंकिया नाट (सं. प्रो. बी. के. बरूआ) - पृ. ९-१०

२. आस्पेक्ट्स ओफ अर्ली आसामीज लिट्. - पृ. १९२-९५

१०

(१) संस्कृत के नाटकों के सदृश ही आसामी अंकों में पूर्वरंग और नान्दी-पाठ का विधान है। प्रारंभ में संस्कृत के श्लोकों के द्वारा कृष्ण या राम की वन्दना की जाती है और पुन: एक श्लोक के माध्यम से कथा-वस्तु की सूचना भी दे दी जाती है। 'नांद्यन्ते सूत्रधार:' वाक्य का प्रयोग तथा सूत्रधार का 'अलमति विस्तरेण' कहते हुए प्रवेश करना दोनों में समान है।

(२) प्ररोचना और आमुख में भी अंकिया नाट संस्कृत नाट्यशैली का अनुवर्ती है। सूत्रधार 'भो:भो: सभासदा: (सामाजिका:) साधु श्रृणुध्वं श्रद्धयाधुना' करता हुआ तथा ब्रजबुली की 'भटिमा' द्वारा काव्यार्थ प्रशंसा एवं सामाजिकों की निपुणता का वर्णन करता हुआ उनमें नाटकोपयुक्त अभिरूचि को जागृत करता है। आमुख में सूत्रधार का ध्यान किसी ध्वनि से भंग होता है और वह अपने संगी-सखी को बुलाकर इसका कारण जानना चाहता है। उसके यह कहने पर कि 'देव वाद्य बाजत' अथवा 'देव दुन्दुभि बाजत' सूत्रधार सामाजिकों को प्रवेश करनेवाले पात्रों की सूचना देता है।

(३) यद्यपि आसामी अंकिया नाट एक ही अंक में समाप्त होता है, फिर भी इसमें न्यूनाधिक रूप में पंच संधियों, कार्यावस्थाओं एवं अर्थ प्रकृतियों का निर्वाह हुआ है।

(४) संस्कृत नाटकों के सदृश अंकिया नाट में भी गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण है। अंकिया नाट में धर्म की प्रमुखता के कारण अनेक गेय पदों का समावेश हुआ है। इन गीतों के माध्यम से कथा-वस्तु का विकास होता चलता है।

(५) भरत वाक्य के लिये मुक्ति मंगल शब्द का प्रयोग पाया जाता है, किन्तु इसमें सभी अभिनेता एवं रंगमंचस्थ वाद्यकार सम्मिलित रहते हैं।

उपर्युक्त सादृश्यों के अतिरिक्त इन दोनों में अनेक असमानताएं भी विद्यमान हैं, जिन्हें अग्रिम अध्ययन की सुविधा के लिये दृष्टिगत कर लेना

११

आवश्यक है । प्रथमत: अंकिया नाट में अंक और दृश्यों की योजना का सर्वथा अभाव है । नाटक जिस दृश्य से प्रारंभ होता है उसी से उसका पर्यवसान भी होता है । यह नाट्य-साहित्य जन साधारण की सम्पत्ति है, अत: इसमें उनकी भावनाओं को उद्बुद्ध कर भक्ति-भावना जागृत करने पर पूर्ण ध्यान रखा गया है ।

उपरि निर्दिष्ट कारणों से नाट्यशास्त्र में वर्जित - युद्ध, भोजन, स्नान, विवाह, आभूषणादि धारण करना, श्रृंगारिक चेष्टाएं आदि -- दृश्यों का भी समावेश इन नाटकों में हुआ है ।[१]

तीसरा अंतर सूत्रधार के स्वरूप तथा विदूषक के अभाव में है । संस्कृत नाटकों में प्रस्तावना के उपरान्त सूत्रधार रंगमंच पर नहीं आता, किन्तु इन नाटकों में वह आद्योपान्त विद्यमान रह कर पूर्वापर प्रसंग को संयुक्त करता चलता है । जब कोई नया पात्र रंगमंच पर प्रवेश करता है तो सूत्रधार उसका परिचय देता है । अंकिया नाट में सूत्रधार को वही स्थान प्राप्त है जो जन-नाटकों में भागवत्, व्यास, व्यवस्थापक अथवा समाजी को दिया जाता है । पात्रों के प्रवेश एवं निर्गम का संकेत तो संस्कृत-शैली के अनुसार है, किन्तु उनके परिचय एवं रूप-लावण्य के वर्णन में जन-नाट्य शैली का अनुसरण किया गया है । सूत्रधार किसी पात्र की अनुपस्थिति में भी उसका विवरण देता चलता है । अतएव वह सम्पूर्ण रूप से नाटक का संचालक होता है ।[२]

इन नाटकों में विदूषक के पात्र का अभाव होता है, किन्तु प्रदर्शन की एकरसता को भग्न करने के लिये मनोरंजनार्थ कुछ पात्र कामिक (Comic) का प्रदर्शन करते हैं जो नाटक की कथा-वस्तु से नितान्त असम्बद्ध होता है । इन के अतिरिक्त एक अन्य अन्तर यह भी है कि संस्कृत नाटकों में गीत या तो अभिनेता विशेष के द्वारा गाया जाता है अथवा नेपथ्य से ; किन्तु

---

१. अंकिया नाट - पृ.१६

२. नाट्य समीक्षा - पृ.५३-५५

१२

आसामी नाटकों में सभी गीत रंगमंचस्थ वाद्यकारों के द्वारा ही गाये जाते हैं ।[१]

नाटकों के भेद --------

उपर्युक्त समानताओं एवं असमानताओं को जान लेने के पश्चात् अब हम आसामी नाटकों के भेदों को संक्षेप में दृष्टिगत करेंगे । आसामी नाटकों के मुख्य रूप से तीन भेद होते हैं --- नाट, यात्रा और झूमरा ।

नाट और यात्रा का विवरण हम पूर्ववर्ती पृष्ठों पर देख चुके हैं । आसामी नाटक अधिकांशत: साहित्यिक हैं और उन में गीत, संगीत एवं नृत्य की प्रधानता रहती है ; अतएव उन्हें यात्रा नाटक की कोटि में रखा जा सकता है । शंकरदेव का 'कालिय दमन', गोपाल आटा का 'जन्म यात्रा', और दैत्यारि ठाकुर का 'नृसिंह यात्रा' इसी प्रकार के नाटक हैं । आसाम में प्राचीनकाल से ही 'चिन्ह यात्रा' का प्रचार रहा है किन्तु आधुनिक युग में उसका अवशेष भी नहीं रहा । शंकरदेवने इस शैली पर अवश्य एक नाटक की रचना की थी और अपने हाथों से रंग-बिरंगे दृश्यों को सजाकर उसका अभिनय भी किया था ।[२]

झूमरा ------ यह एक प्रकार का एकांकी गीति नाट्य होता है, जिसमें सम्पूर्ण कथा-वस्तु विभिन्न गीतों एवं संगीतों के माध्यम से कही जाती है । यत्र-तत्र गद्य भाग भी आता है, जिसका सूत्रधार एक विशेष शैली में उच्चारण करता है । कभी-कभी कोई पात्र भी गद्य का प्रयोग कथोपकथन में करता है, किन्तु वहां पर उसका उद्देश्य अपने गाये हुए गीतों का अर्थ स्पष्ट करना होता है ।[३] अपनी सम्पादकीय भूमिका में प्रो. कालिराम मेधी[४]ने लिखा है कि इस नाटक का विकास नृत्य विशेष से हुआ होगा, जिसमें

----

१. अंकावली - पृ. ३४
२. आस्पेक्ट्स ओफ अर्ली आसामीज लिट्. पृ. २०२
३. वही - पृ. २०३
४. अंकावली - पृ. ४४

१३

झूमरी नामक राग में सामूहिक गायन होता था । विद्यापतिने भी एक स्थल पर झूमरी शब्द का प्रयोग किया है, जिसमें स्त्रियों के सामूहिक गान का ही निर्देश मिलता है । डा. दशरथ ओझाने [१] भी इसी मत का समर्थन किया है । माधवदेव के चार नाटक --- भोजन विहार, भूमि लुटिया, चोर धरा एवं पिम्पर गुचुआ तथा दैत्यारि ठाकुर के अर्जुन भंजन नाटक इसी झूमरा शैली में लिखे गये हैं ।

आसामी नाटकों की रंगमंचीय रचना --------

प्रो. कालिराम मेधी[२] के अनुसार आसाम में किसी भी प्रासंगिक प्रदर्शन या भावना के लिये स्थायी रंगमंच की व्यवस्था नहीं होती । नामघरो या कीर्तन घरों में ही रंगशाला का निर्माण कर वैष्णव भक्त समय-समय पर नाटकों का अभिनय किया करते थे । विशेष पर्वो के अवसर पर विशाल जन-समूह के लिये खुले मैदान में अस्थायी रंगशालाएं तैयार कर ली जाती थीं जिसे 'सभा' या 'सभाघर' कहा जाता था । यह एक विशाल पंडाल के रूप में निर्मित होता था जिस में रंगमंच पर पच्चीकारी के कामवाली चांदनी टंगी होती थी । दर्शकों के बैठने के स्थान को दो भागों में विभाजित कर दिया जाता था, जिससे मध्य होकर यातायात की सुविधा बनी रहे ।

रंगमंच के एक उच्च स्थान पर एक घेरे में कृष्ण की मूर्ति स्थापित की जाती और प्रथा के अनुसार उनकी पूजा होती थी । उस घेरे के नीचे सन्निकट 'दोहार' (Orchestra) या गायन वायन की मंडली बैठती थी । इस मंडली के पीछे के भाग में एक चित्रित 'आर वस्त्र' अथवा यवनिका टंगी रहती । दर्शकों के सम्मुख आने से पूर्व पात्र इस यवनिका के पीछे नृत्य करता और उसके हटते ही रंगमंच पर प्रवेश करता था । इसी

---

१. नाटय समीक्षा - पृ.१०५

२. आस्पेक्ट्स ओफ अर्ली आसामीज़ लिट्.पृ.२१४

१४

यवनिका के पृष्ठ भाग में अथवा कभी-कभी कुछ हटकर भी 'छो घर' या नेपथ्य गृह होता था जिसमें नाटकोपयोगी सभी सामग्री - तीर, धनुष, विविध आयुध तथा पोशाक आदि ----- संगृहीत रहती थीं। कृष्ण मूर्ति के पृष्ठ भाग में पात्रों के प्रतीक्षा का स्थान निर्धारित रहता था।

रंगमंच के समीप पथ के दोनों ओर गलीचे या कम्बल बिछा दिये जाते, जिस पर महन्त और गोस्वामी विराजमान होते थे। अवशिष्ट स्थानों पर चटाइयां बिछा दी जातीं जिन पर दर्शकगण एक दूसरे से सट कर बैठते। रभा या रभाघर के एक तरफ, पुरूष दर्शकों से कुछ हटकर स्त्रियों के बैठने की व्यवस्था रहती थी।

अन्य जन-नाटकों की भांति अंकिया नाट का अभिनय भी रात में भोजनोपरान्त प्रारंभ होकर लगातार सूर्योदय तक चलता रहता है। प्रकाश की व्यवस्था के लिये फाड़-फानूस पर मोमबत्ती जलायी जाती है और मिट्टी निर्मित दीपकों से सरसों के तेल द्वारा प्रकाश किया जाता है। केले निर्मित खंभों पर मिट्टी के दीपक प्राय: सुशोभित होते हैं। इन दीपकों में रूई या कपड़े की बत्ती के स्थान पर तेल में भींगे बिनौलों के द्वारा प्रकाश किया जाता है। मशाल की भी व्यवस्था की जाती है। ये मशाल बांस में कपड़े लपेटकर तैयार किये जाते हैं और सरसों के तेल से उन में प्रकाश किया जाता है। किसी पात्र विशेष पर नृत्य-काल में तीव्र प्रकाश के लिये भी व्यवस्था रहती है।[१]

----

१. नाट्य समीक्षा - पृ.१०१, तथा तुलनीय -----

Often chandeliers and hanging Wax-Candles with glass chimneys as also candle-stands in the form of tress with branches to hold hundreds of earthern lamps of mustard oil are used. - - - - - - - - - - - In such cups seeds of cotton are put and kept soaked in mustard oil. - - - - - - - - - - - Brilliant and dazling light of 'mahata' (Pyrotechnic light) is also used when an actor enters or dances.

(Aspects of Early Assamese Literature P.215)

प्रसाधन -------- अंकिया नाट में स्त्री पात्र के लिये प्राय: किशोर बालकों को स्त्रियोचित वस्त्राभूषण के द्वारा सुसज्जित किया जाता है। आभूषणों में आभेदय, कुंडल, मेखला, किंकिणी, नूपुर, हार, हैमसूत्र इत्यादि प्रसिद्ध हैं। तीन प्रकार के वस्त्र उपयोग में आते हैं ----- शुद्ध श्वेत, विचित्र और चमकीले। धार्मिक पुरूष, देवता, यक्ष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, स्त्रियां तथा उच्चपात्र शुद्ध वस्त्र धारण करते हैं। मद्यप, विक्षिप्त, विरक्त आदि विचित्र चीथड़ेवाले वस्त्र पहनते हैं। योद्धा, प्रेमी, राजा, मंत्री आदि चमकीले तड़क-भड़क वाले वस्त्र धारण करते हैं। अंकिया नाट में भावाभिव्यक्ति के हित वस्त्राभूषण को अधिक महत्व दिया जाता है। स्त्रियों के केश विन्यास एवं पुरूषों के दाढ़ी-मूंछ की रचना में कौशल की आवश्यकता होती है।[१]

इन नाटकों में विभिन्न पात्रों को, उनके अभिकार्य के रूप-गुण के अनुरूप, विभिन्न रंगों के द्वारा सुसज्जित किया जाता है। पशु-पक्षी एवं जानवरों के मुखड़ों का प्रयोग अंकिया नाट की अपनी निजी विशेषता है। इन चेहरों के द्वारा पात्रों को पहचानने में सुविधा रहती है। बांसों एवं हल्की लकड़ी के बने हुए आयुधों का व्यवहार इसमें किया जाता है। पौराणिक कथानक के कारण, स्वर्ग, नरक, सिंहासन, पर्वत, वन, उपवन आदि के दृश्यों को दिखाने के लिये जानवरों के बाल, स्वर्ण, रजत, टीन, अबरक आदि का भी प्रयोग होता है।

पुरूष पात्र मुकुट, टोपी, नकली मूंछ-दाढ़ी एवं वय के अनुसार नकली केश धारण करते हैं। इस प्रकार कृष्ण का अभिनय करने वाला पात्र मुकुट के ऊपर मोर-पंख लगा लेता है, संन्यासी के अभिनय के लिये

----

१. नाट्य समीक्षा - पृ.१०२

१६

श्वेत केश एवं दाढ़ी-मूछ तथा गेरुवे रंग का कौपीन पहनता है । स्त्रियां प्राय: रंगीन मेखला पहनती हैं और वय के अनुसार काले या श्वेत केश धारण करती हैं । योनि और वय के अनुसार सभी पात्र विभिन्न प्रकार के आभूषण भी धारण करते हैं ।[१]

अभिनय ------- आसाम में अभिनेता को 'नटुवा' अथवा 'भावरिया' कहते हैं । नाटक के सभी पात्रों में सूत्रधार का प्रमुख स्थान होता है । संस्कृत-नाट्य-शैली के अनुसार इन नाटकों की प्रस्तावना के अंत में 'इति सूत्र निष्क्रान्त:' का विधान पाया जाता है, किन्तु एक अन्तर यह है कि संस्कृत के नाटकों में प्रस्तावना के पश्चात् सूत्रधार सर्वदा के लिये अदृश्य हो जाता है ; जब कि अंकिया नाट में वह आद्योपान्त रंगमंच पर विद्यमान रहकर समवेत संगीत में भाग लेता है तथा श्लोक और पाठिका का सस्वर पाठ करता है । वह कथा-सूत्र को समन्वित करने के लिये बीच-बीच में गद्य का प्रयोग करता है और मुख्य अभिनय में भाग न लेते हुए भी कथावाचक या व्यास के रूप में तारतम्य का निर्वाह करता

----

१. Male actors wear crown, cap, matted hair, false heard and Dhiskers and hair suitable to age and position. Thus Krishna wears a crowa of peacock's tail, a sage, a head of false white hair and similar heards and Dhiskers indicating age and a King or a warrior, false black mustaches. Female churacters, if young, tie their false black hair in a single knot and, if old or aged, false grey hair loose. All kinds of Assamese ornaments are worn by the actors appropriate to age and sex. Tinkling belts (   ) and anklets (   ) are also used.

(Aspects of Early Assamese Literature P.218)

चलता है । ऐसा प्रतीत होता है कि ओजापाली का नेता ही अंकिया नाट में सूत्रधार के नाम से अभिहित हुआ ।[१]

अंकिया नाट के पूर्वरंग की प्रक्रिया में प्राय: नाट्यशास्त्र के सभी विधि-विधानों --- प्रत्याहार, अवतरण, आरंभ, आश्रावणा, संघटना, आषारिता, गीत, उत्थापन, परिवर्तन आदि ---- का उपयोग पाया जाता है । आसामी नाटकों में इन पूर्वरंग की प्रक्रियाओं को 'धेमाली' कहते हैं । प्रारंभ में पंक्ति में बैठे हुए वायन के द्वारा ढोल बजाया जाता है और पश्चात् अर्ध वृत्ताकार में खड़े हुए गायन झांझ-मजीरा के साथ सम्मिलित गान प्रस्तुत करते हैं । इसके बाद वायन खड़े होकर 'बर धेमाली' और 'देव धेमाली' का प्रारंभ करते हैं और ढोल बजाते हुए उसी के लय पर वृत्ताकार रूप में नृत्य करते हैं अथवा रंगमंच पर चारों ओर तीव्र गति से घूमने लग जाते हैं । इस के पश्चात् विश्वनियन्ता और गुरू की स्तुति की जाती है । इन विधियों की परिसमाप्ति पर सूत्रधार रंगमंच पर जाता है और गति वेग में वृद्धि करता हुआ ताण्डव नृत्य प्रस्तुत करता है ; तथा तदुपरान्त नान्दी गान करता है । इन प्रक्रियाओं के पश्चात् अन्य पात्रों का प्रवेश होता है ।[२]

इन नाटकों में जब कोई नया पात्र रंगमंच पर प्रवेश करता है तो उसके रूप, रंग, गुण, उद्देश्य और मनोदशा आदि का वर्णन सूत्रधार ही करता है । इस परिचय में वह गद्य-पद्य के साथ ही संस्कृत के श्लोकों का भी प्रयोग करता है । एक पात्र के प्रवेश का प्रभाव दूसरे पात्र पर किस रूप में पड़ता है इसका वर्णन, उन पात्रों के हाव-भाव एवं मुख मुद्रा के अतिरिक्त सूत्रधार अपने शब्दों के माध्यम से सामाजिकों को बताता है । वह रंगमंच पर बैठकर ही आवश्यकतानुसार पात्रों को अन्यत्र भेज देता है और पुन:

---

१. आस्पेक्ट्स ओफ अर्ली आसामी लिट्. पृ. २१५

२. अंकावली - भूमिका - पृ. ५०-५२

अपनी इच्छा से उसे बुला भी लेता है । पात्रों की अनुपस्थिति में सूत्रधार ही उनका विवरण प्रस्तुत करता है ।

अंकिया नाट में दृश्य विधान का नितान्त अभाव है । नाटक जिस दृश्य से प्रारंभ होता है उसी से उसकी परिसमाप्ति भी होती है । दो भिन्न दृश्यों से सामाजिकों को अवगत कराने के लिये सूत्रधार के कथोपकथन का व्यवहार पाया जाता है । वह नये दृश्य का विधान अपने प्रसंगानुरूप गीतों के द्वारा भी करता रहता है । डा. दशरथ ओझाने संभावना प्रकट करते हुए कहा है कि "संभवत: पटाक्षेप के स्थान पर पृष्ठभूमि का पट-परिवर्तन होता रहा होगा । भीष्मक की राजधानी और द्वारकापुरी के दो चित्रपटो द्वारा स्थान का बोध कराया गया होगा ।"[१]

भाषा ------- अंकिया नाटकों की भाषा ब्रजबुली है । वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान के साथ साथ भारत के अधिकांश भागों में भाषा संबंधी एक नयी लहर तीव्र गति से फैलने लगी । दूरदर्शी वैष्णव भक्तोंने जन कल्याण के लिये एक ओर तो प्रान्तिय भाषाओं में गीतों की स्थापना की और दूसरी ओर सारे देश के वैष्णव समाज की भाषा की एकता के लिये कृष्ण के जन्मस्थान की अपभ्रंश भाषा शौरसेनी की पुत्री ब्रजभाषा को आधार बनाकर अवधी, मैथिली, बंगाली और असमिया के मिश्रण से वैष्णव-भाषा का आविष्कार किया, जिसे कालान्तर में ब्रजबुली के नाम से अभिहित किया जाने लगा । कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो. सुकुमार सेनने लिखा है कि इस कृत्रिम भाषा को ब्रजबुली के नाम से अभिहित किये जाने का यह कारण है कि इससे हमें राधा-कृष्ण की पवित्र लीला-भूमि ब्रज का स्मरण हो आता था जो वैष्णव आन्दोलन का एक मुख्य उद्देश्य था ।[२]

----

१. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - पृ. ३७५ (तृतिय संस्करण)

२. This arsificial language was given the name of Brajabuli because it reminded one of Braja, the land sancsified by the presence of Radha and Krishna.
(Quoted in JARS., October, 1941)

१६

प्रो.कालिराम मेधीने अपना मंतव्य प्रकट करते हुए कहा है कि ब्रजबुली का आधार निश्चित रूप से कोई-न-कोई बोल चाल की भाषा रही होगी, क्योंकि भाषा विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि कोई भी कृत्रिम भाषा निराधार निर्मित नहीं हो सकती। ----- किन्तु यह तो निर्विवाद है कि प्राकृत के भिन्न भिन्न प्रकार किसी न किसी स्थान पर बोली जानेवाली भाषा के आधार पर निर्मित हुए होंगे। ठीक यही स्थिति ब्रजबुली की भी है। अत: इस संभावना का ठोस आधार है कि ब्रजबुली मथुरा के समीप व्यवहृत प्राचीन जन-भाषा का आधार लेकर निर्मित हुई होगी। अतएव शंकरदेवने अपने नाटकों में ब्रजबुली का व्यवहार केवल इसलिये किया कि यह भाषा उस ब्रज की जन-भाषा थी जहां शौरसेनी नामक प्राकृत संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त होती थी।[१]

डा.दशरथ ओझा[२] लिखते हैं कि शंकरदेव की भाषा १२वीं शताब्दी में प्राप्त बनारस के आसपास की भाषा से बहुत कुछ साम्य रखती है। अभी शोध द्वारा १२वीं शताब्दी की बोलचाल की भाषा का

---

१. ------ Brajavali must have been based on some spoken dialect, for no artificial language is known to have been created out of nothing. - - - - - - - - - - - - So is evidently the case with Brajvali. Thus there are grounds for supposing that Brajvali is based on the ancient dialect of Mathura. - - - - - - - - - - - - - Shankaradeva used Brajabuli in his dramas because it was supposed to have been the language of the place (Vraja) where saurseni, the usual Prakrit of Sanskrit Drama, was spoken.
(JARS, October 1941, and Aspects of Early Assamese Literature P.198)

२. नाट्य समीक्षा - पृ.६१

परिचय प्राप्त हुआ है, जिसमें भोजपुरी एवं मैथिली का पुट पाया जाता है। आज भी बनारस जिले के पूर्वी भाग की भाषा प्राय: वही है जो शंकरदेव के नाटकों के गद्य भाग में पायी जाती है।

दूसरे स्थान पर आप लिखते हैं कि "इन नाटकों की भाषा में ब्रजभाषा के साथ-साथ मैथिली का भी पुट पाया जाता है। संभवत: इसका मूल कारण यह है कि गीत गोविन्द की शैली पर अभिनीत ये नाटक भारत के पूर्वी भागों में प्रचलित हुए और पूर्वी भागों की जन-भाषा पर मैथिली कवियों का बड़ा प्रभाव रहा है। ------- गौड़देश के प्रसिद्ध कवि यशोराज और उड़ीसा के महाकवि रमानन्द राय आदिने ब्रजबुली में मधुर मैथिली शब्दावली का योग देकर भाषा को मधुरिमा से आप्लुत कर दिया।"[१]

उपर्युक्त तीनों मतों के समाहार रूप में यह कहा जा सकता है कि शंकरदेवने बारह वर्षों तक तीर्थाटन किया, जिस मध्य वे अनेक स्थानों पर गये और वहां की विशेषताओं से प्रभावित भी हुए। तीर्थाटन से लौटने पर उन्होंने दृश्य काव्य के माध्यम से अपने सिद्धान्त का प्रचार-कार्य प्रारंभ किया। भाषा मूलत: अभिव्यक्ति का साधन मात्र है। अत: इस कार्य के लिये ऐसी भाषा की आवश्यकता थी जो जन-सम्पर्क स्थापित करने के साथ ही लोकप्रिय, मधुर और कृष्ण-भक्ति से संबंधित हो। जन-नैकट्य के लिये आसाम की जन-भाषा उपयुक्त सिद्ध हुई ; मैथिली में मिठास और लोकप्रियता विद्यमान थी, क्योंकि विद्यापति के पद वैष्णव भक्तों द्वारा भाव-विभोर होकर गाये जाते थे और भाषा एक प्रकार से तत्कालीन वैष्णवों की भाषा बन गयी थी तथा व्रजभाषा कृष्ण के जन्म स्थान की भाषा थी और जैसा कि कहा जा चुका है कि इसी स्थान की प्राकृत भाषा नाटकों में व्यवहृत होती थी। अतएव शंकरदेवने अपने सिद्धान्त के प्रचार-प्रसार और लोकप्रिय बनाने के लिये उक्त तीन भाषाओं का अद्भुत संमिश्रण कर

----

१. नाट्य समीक्षा - पृ. १०७-१०८

एक नयी भाषा का आविष्कार किया जिसे कालान्तर में ब्रजबुली की संज्ञा मिली । ज्यों ज्यों यह सिद्धान्त अधिक प्रसारित होता गया और भक्तों की संख्या बढ़ने लगी त्यों-त्यों इस नवीन आविष्कृत भाषा का रूप भी बदलता गया और विभिन्न भाषाओं का संमिश्रण होने लगा । मैथिली भाषा की मधुरिमा, व्यापकता तथा कामरूप प्रदेश के साथ मिथिला प्रदेश के सम्पर्क और नैकट्य के कारण उक्त ब्रजबुली में सर्वाधिक मैथिली का पुट पाया जाता है ।

अंकिया नाटकों में गद्य और पद्य दोनों का व्यवहार हुआ है । शंकरदेवने अपने अंतिम नाटकों में कथोपकथन के लिये गद्य को ही प्रमुख स्थान दिया है । गद्य का प्रयोग प्राय: कथा की गति को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है और साथ ही घटनाओं तथा क्रिया-कलापों का ज्ञान भी गद्य के माध्यम से ही कराया जाता है । किन्तु भावों और भावनाओं को जागृत करने के लिये गीतों का प्रयोग होता है । गद्य के कथोपकथन में तत्कालीन नाटकों की सम्वाद शैली का सुन्दर उदाहरण प्राप्त हो जाता है । अंकिया नाट की भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग बड़ा ही हृदयग्राही बन गया है ।

अंकिया नाट पर अन्य प्रभाव -----------

प्रो.कालिराम मेधी का मन्तव्य है कि भारतीय भाषा-नाटकों का प्रभाव किस सीमा तक आसाम के अंकिया नाट पर पड़ा है, इसका अनुसंधान करना कठिन अवश्य है । रासलीला, रामलीला, कथाकली, भवाई आदि जन-नाट्य रूपों का प्रभाव इन नाटकों पर अंशमात्र भी नहीं है । बंगाल के यात्रा नाटकों का उद्भव आसाम के जन-नाटकों के पश्चात् हुआ है, अत: इसको भी प्रभाव स्वीकार नहीं किया जा सकता । शंकरदेव जिस समय तीर्थयात्रा कर रहे थे उस समय उमापति और विद्यापति के कीर्तनियां नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत हो रहे थे और साथ ही उनकी कोमल-कान्त

पदावली पर्णकुटी से लेकर राजप्रासाद तक गूंज रही थी । अत: संभवत: मिथिला की कीर्तनियां शैली के नाटकों का प्रभाव अंकिया नाट पर पड़ा हो । किन्तु इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं होता कि अंकिया नाट के पुरष्कर्ता शंकरदेवने कीर्तनियां नाटकों को अभिनीत होते देखा हो । दूसरी बात यह भी है कि कीर्तनियां नाटकों में कथोपकथन में संस्कृत-प्राकृत का व्यवहार हुआ है, और केवल गीतों में मैथिली का । इसके विपरीत अंकिया नाट में सम्पूर्णत: ब्रजबुली ही व्यवहृत हुई है । एक अन्य अन्तर सूत्रधार के स्वरूप का भी है । कीर्तनियां नाटकों में संस्कृत नाटक के सदृश प्रस्तावना के पश्चात् सूत्रधार पुन: रंगमंच पर नहीं आता, जब कि अंकिया नाट में वह सदा रंगमंच पर विदयमान रहकर कथा के तारतम्य का निर्वाह करता रहता है ।

इन दोनों नाट्य-रूपों में केवल एक समानता है कि ये दोनों एकांकी होते हैं । अत: केवल इस सादृश्य के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि कीर्तनियां शैली के अनुकरण पर अंकिया नाट की रचना हुई है । अतएव उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर असंदिग्ध रूप से यह कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओं के नियमित नाट्य रूपों में आसाम का अंकिया नाट प्राचीनतम है । आसामी नाटक और गद्य भारतीय भाषा-साहित्य में प्रथम स्थान प्राप्त करते हैं ।[१]

---

१. It is difficult to ascertain the extent of influence, if any, of the Vernacular drama of other parts of India on the Assamese drama. The Rasadhari and Ramlila of Uttar India, the Kathakali of Southern India and the Bhavai of Gujarat had apparantly no influence. --------- In Bengal the Yatra was of very recent origin. --------- - - - - - - - - - - - - - - - - It is no where stated that

इसके विपरीत, प्रो.बी.के.बरूआ का मन्तव्य है कि शंकरदेव तथा उनके परवर्ती वैष्णव नाट्यकारों के नाटकों की भाषा में अधिकांशत: मैथिली का पुट प्राप्त होता है । तीर्थ यात्रा के पूर्व शंकरदेवने विशुद्ध आसामी भाषा में रचना प्रस्तुत की थी, किन्तु इस संमिश्रित भाषा को अकस्मात् अपनाया जाना एक आश्चर्यपूर्ण रहस्य ही कहा जायेगा । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इस भाषा में दृढ़ता के साथ सर्व-जन भोग्यता भी विद्यमान थी । मध्यकाल में मिथिला प्रदेश इस नवीन वैष्णव आन्दोलन का प्रधान केन्द्र था और विद्यापति की सुमधुर तथा संवेदनशील शब्दावली इस सिद्धान्त के अनुकूल सिद्ध हुई । पर्याप्त साहित्यिक एवं ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कामरूप के कतिपय विद्वान् और भक्तोंने मिथिला प्रदेश की यात्रा की तथा वहां की भाषा भी सिखी । एक प्रकार से आसाम का

Contd....
Shankaradeva, the originator of Assamese drama, ever had any occasion to witness the representation of this play. Also, in this drama characters used Sanskrit and Prakrit and the songs alone were in Maithili. On the other hand Shankaradeva dispensed altogether with Prakrit, used Sanskrit only in the Shlokas and otherwise composed all his plays in the Brajabuli -- Assamese language. - - - - - - - - - There is only one point of resemblance between the two. Both are one - act plays. This, however, means nothing. - - - - - - The evidence available shows unmistakably that the Assamese drama is the earliest among the regular Vernacular dramatic works in India. Assamese prose and drama, as is at present known, occupy the first place among the Vernacular literature in India.
(An Article "origin of Assamese drama" in Aspects of Early Assames Literature P.200)

नवीन जागरण विद्यापति से ही प्रभावित रहा । कामरूप के भक्तोंने विद्यापति के अनुकरण पर ही रचनाएं प्रस्तुत कीं । अधिकांशत: संभावना यही है कि उमापति के पारिजात हरण नाटक के अभिनय को देखकर तथा उससे प्रभावित होकर ही शंकरदेवने अपने नाटकों की रचना प्रस्तुत की ।[१]

शंकरदेवने विभिन्न स्थलों की यात्रा की थी और उन स्थलों के वैष्णव-आन्दोलन से प्रेरणा ग्रहण करने के पश्चात् ही इन्होंने आसाम में इसका सूत्रपात किया था । जैसा कि हम पूर्ववर्ती विवेचन में दृष्टिगत कर चुके हैं और परवर्ती विवेचन में देखेंगे कि इनके पूर्व नाटक लिखने तथा उसके अभिनय की सुव्यवस्थित परिपाटी आसाम में विद्यमान नहीं थी । इससे इतना तो अवश्य अनुमान किया जा सकता है कि उत्तर भारत के, विशेषरूप से मिथिला के, कृष्ण विषयक नाट्य-रूपों को देखकर और उनसे प्रभावित होकर उन्होंने नाटकों की रचना एवं अभिनय द्वारा अपने धर्म का प्रचार प्रारंभ किया होगा ।

----

१. The prose of Shankaradeva's dramas and of those of the succeeding Vaisnava dramatists is an artifical diction ; it is mixed with Maithili. - - - - - - - His sudden departure in to this mixed language is almost an enigma. Was it because it had in it both the elements of orignity and general intelligibility ? - - - - - - - - - During the mediaeval time, a common language was formed at Mithila, the great centre of this heo - Vaisnavism. - - - - - - - - - - Enough literary and historical evidences remain to show that scholars from Kamrap also visited Mithila and learnt the language. In a sense, the whole spirit of the new revival became embodied in Vidyapati. - - - - - - Shankaradeva possibly influenced by his witnessing some of the plays of the Maithili poets, for instance, the Parijat Haran of Umapati, when he was in Bihar in the heyday of Vidyapati's fame.

(Ankia Nat, Introduction - P.18-19)

प्रो. कालिराम मेघी का यह कहना कि सूत्रधार का स्वरूप अंकिया और कीर्तनियां शैली में नितान्त भिन्न है, युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। उमापति के सूत्रधार एवं रासलीला के रासधारी के साथ अंकिया नाट का सूत्रधार न्यूनाधिक रूप में अवश्य समता रखता है। विषय-वस्तु एवं उसके प्रस्तुतीकरण में भी अनेक स्थलों पर सादृश्य दृष्टिगोचर होता है जो परवर्ती अध्यायों में कीर्तनियां नाटक के स्वरूप के विवेचन से प्रकट है। अतएव यही कहा जा सकता है कि शंकरदेवने विभिन्न उत्सों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करने के पश्चात् उन्हें इस प्रकार से आत्मसात कर एक नये रूप में उपस्थित किया कि यह संमिश्रित रूप उक्त प्रेरणा सूत्र के रूपों से पृथक् प्रतिभासित होने लगा।

शंकरदेव को अपने क्षेत्र में वैष्णव-भक्ति का प्रचार और प्रसार करना था, अत: यह नितान्त आवश्यक था कि वे उस स्थल के जन-नाट्य-रूपों को भी अपनाते। अतएव ओजापाली का, विभिन्न उत्सों से पड़नेवाले प्रभावों के आधार पर, परिष्कृत रूप ही अंकिया नाट में दृष्टिगत होता है। हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में दृष्टिगत कर चुके हैं कि मैथिली नाटक का प्रत्यक्ष संबंध संस्कृत नाट्य परम्परा से है; उसी प्रकार अंकिया नाट में भी मूल प्रेरणा-स्रोत के रूप में उसी दृढ और सुविकसित परम्परा को स्वीकार करना पड़ेगा। शंकरदेव संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे, अत: वे अपने नाटकों में उस परम्परा के मोह का त्याग नहीं कर सके हैं, जो पूर्ववर्ती विवेचनों से स्पष्ट है। इतना अवश्य है कि समयानुकूल परिष्करण के साथ ही इन्होंने उसे उपस्थित किया है।

२६

प्रमुख नाटककार और उनका संक्षिप्त परिचय --------

(१) शंकरदेव ----- वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन के पूर्व आसाम में नाटक लिखे जाने का कुछ भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता । शंकरदेव के समय से ही नाटकों का प्रचार और अभिनय प्रारंभ हुआ तथा आसाम में नाटक के प्रति जन-सामान्य में अभिरूचि भी जागृत हुई ।[१] अतएव पं. हेमचन्द्र गोस्वामीने इन्हें आसामी नाटक-साहित्य का जनक (पुरष्कर्ता) स्वीकार किया है ।[२] शंकरदेव जब तीर्थाटन से विभिन्न नाट्य-रूपों से प्रभावित होकर लौटे और अपने धर्म का प्रचार प्रारंभ किया तो उन्होंने विभिन्न सत्रों में इस परंपरा की नींव भी डाली कि उस सत्र की गादी पर बैठनेवाले अधिकार स्व रचित नाटक का अनिवार्य रूप से अभिनय करें ।[३] इस अर्थ में भी वे आसामी नाटक-साहित्य के प्रश्रयदाता कहे जा सकते हैं ।

एक अन्य तथ्य यह भी है कि शंकरदेव के समय में साहित्य में दो दल विद्यमान थे । प्रथम दल तथाकथित वैष्णव आन्दोलन से नितान्त अछूता था, वह इसके प्रभाव से दूर रहकर शुद्ध लौकिक वृत्तान्तों पर रचनाएं प्रस्तुत किया करता था । किन्तु इस दलने नाटकों की रचना की हो ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं होता । इस दल के प्रमुख रचनाकारों में दुर्गावर और पीताम्बर का नाम लिया जा सकता है ।[४] दूसरे दल का नेतृत्व

---

१. जेरआरएस, जुलाई १९३३ पृ.३५

२. वही, अप्रैल १९३३, पृ.२७

३. वही, अक्टूबर १९४१, पृ.१०४

४. Durgavara and Pitambara are contemporaries of Shankaradeva. They are in a way free from the far reaching influences of neo - Vaishnavism that had spread in Assam from the latter part of fifteenth century and their poetry is more secular than religious in tone.

(Aspects of Early Assamese Literature P.17)

शंकरदेव कर रहे थे, जिन्होंने, वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन से प्रभावित होकर उस सिद्धान्त को बोधगम्य और लोकप्रिय बनाने के लिये, नाट्य-रूपों का सहारा लिया ।

जिस समय शंकरदेव का जन्म हुआ उस समय आसाम में तांत्रिक पूजा-पद्धति जोरों पर था । वाम मार्गों के कारण समाज में संकीर्णता आ गयी थी और निरीह पशु-पक्षियों की हत्याकर देवी-देवताओं की पूजार्चना की जाती थी । संकीर्णता और कट्टरवादिता के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद-भाव आ गया था । शंकरदेव का परिवार भी कट्टर शाक्त था, किन्तु किसी अदृश्य दैवी प्रेरणा से इनके मस्तिष्क पर अपने परिवार के इस संस्कार की छाप नहीं पड़ पायी । बचपन से ही इनके हृदय में, धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर, निरीह, विवश तथा निस्सहाय जन-सामान्य के प्रति सहानुभूति, प्रेम और सहयोग का बीज पनप रहा था ।

शंकरदेव के मन में तत्कालीन समाज में प्रचलित आचार-विचार एवं कुप्रथाओं के प्रति घोर घृणा की भावना विद्यमान थी ।[१] अतएव अपने समाज को तथाकथित कट्टर पंथियों के पंजों से मुक्ति दिलाने के लिये कृत संकल्प होकर तथा महेन्द्र कन्दली के चरणों में बैठकर इन्होंने विविध शास्त्रों का प्रगाढ अध्ययन किया । अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त इन्होंने अपने गुरू तथा कुछ शिष्यों के साथ भारत के प्रमुख तीर्थों का भ्रमण भी किया । देश के प्रमुख वैष्णवाचार्यों से प्रभावित और अनुप्राणित होकर जब ये तीर्थाटन से वापस आये तो वेद और अद्वैत दर्शन के अनुसार अहिंसा, सत्य और समता के आधार पर वर्ण-धर्म निरपेक्ष 'एक शरण नामधर्म' नामक पृथक् भक्ति-सिद्धान्त की स्थापना की । इनकी भक्ति दास्य भाव की थी, अतः इनके आदर्श उद्धव हैं, राधा नहीं ।[२]

---

१. अंकावली - भूमिका - पृ. ६२

२. वही - पृ. ६५

उपर्युक्त रेखा-चित्र से शंकरदेव के दृढ़ व्यक्तित्व, निष्ठा, कर्मठता, ध्येय के प्रति श्रध्धा और आत्म विश्वास, भक्ति-भावना तथा कल्याणकारी बुद्धि आदि गुणों का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है । अपने उद्देश्य की प्राप्ति और उसके प्रचार-प्रसार के लिये इन्होंने छह नाटकों की रचना की, जिनके नाम रचना कालक्रमानुसार इस प्रकार हैं -----

कालिय दमन, पत्नी प्रसाद, केलि गोपाल, रूक्मिणी हरण, पारिजात हरण और राम विजय ।[१]

इसके विपरीत, प्रो. बरूआने शंकरदेव के नाटकों को इस क्रम में रखा है -----

कालिय दमन, रास क्रीड़ा या केलि गोपाल, पत्नी प्रसाद, पारिजात हरण, राम विजय और रूक्मिणी हरण ।[२]

(२) माधवदेव -------- ये शंकरदेव के पट शिष्य थे । शंकरदेव से भेंट होने के पूर्व ये कट्टर शाक्त थे । संयोग वशात् अपने साले के माध्यम से इनका परिचय शंकरदेव से हुआ । कहा जाता है कि इन दोनों के मध्य तुमुल दार्शनिक शास्त्रार्थ हुआ और इसके पश्चात् शंकरदेव के व्यक्तित्व, पांडित्य एवं उनकी भक्ति-भावना से माधवदेव अध्यधिक प्रभावित हुए और अंत में इन्होंने शाक्तमत का परित्याग कर वैष्णव मत को शिरषा अंगीकार कर लिया । इस सिध्धान्त-परिवर्तन के पश्चात् ये अपने गुरू के परम विश्वास पात्र बन गये और छाया की भांति उनका अनुसरण करने लगे । माधवदेवने आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर अपने जीवन को कृष्णार्पण कर दिया । इन दोनों गुरू-शिष्यों के सिद्धान्तों में मुख्य अन्तर यह है कि शंकरदेव की भक्ति-पद्धति दास्य भाव की है, उनके कृष्ण वयस्क हैं ;

---

१. अंकावली - भूमिका - पृ. ७१-७६

२. अंकिया नाट - भूमिका - पृ. ३५-४१

अतएव उनके नाटकों में मुख्य रूप से प्रेम का प्राधान्य है । किन्तु माधवदेव ब्रह्मचारी थे, अत: इनके कृष्ण का स्वरूप बालक का है । यही कारण है कि इनके नाटकों में मुख्यरूप से वात्सल्य रस की प्रधानता है ।

माधवदेव के नाम से आठ नाटक उपलब्ध हैं, जिनके नाम क्रम में इस प्रकार हैं -------

अर्जुन मंजन, चोर धरा, भूमि लुटिवा, पिम्पर गुचुआ, भोजन विहार, रास झूमरा, भूषण हरण, और कोटोरा खेला ।[१]

प्रो. बरूआ का क्रम इस प्रकार है -------

अर्जुन मंजन, भूमि लुटिवा, भोजन विहार, भूषण हरोवा, चोर धरा, कोटोरा खेला, पिम्पर गुचुआ और रास झूमरा ।[२]

उपर्युक्त आठ नाटकों में से माधवदेव रचित वास्तव में पांच ही हैं, अर्थात्, अर्जुन मंजन, चोर धरा, भूमि लुटिवा, पिम्पर गुचुआ और भोजन विहार । शेष तीन नाटकों --- भूषण हरण, रास झूमरा और कोटोरा खेला -- की रचना में सन्देह की गुंजाइश है कि इनकी रचना माधवदेवने की थी या नहीं । प्रो. मेधीने[3] शंका व्यक्त करते हुए कहा है कि उस समय के किसी भी चरित्र में इन नाटकों के नामों का उल्लेख नहीं है । द्वितीयत:, भक्तों में यह प्रसिद्ध है कि शंकरदेवने छह तथा माधवदेवने भी केवल छह नाटकों की रचना की । तीसरी और महत्वपूर्ण बात यह भी है कि इन तीनों नाटकों की रचना इनके एक शरण सिद्धान्त के विरूद्ध गयी है और इस सिद्धान्त की मखौल उड़ायी गयी है । यह कहना उचित नहीं होगा कि माधवदेवने स्वयं अपने सिद्धान्त के विरूद्ध इन नाटकों की

----

१. अंकावली - भूमिका - पृ. ८८

२. अंकिया नाट - भूमिका - पृ. ४१-४५

३. अंकावली की भूमिका - पृ. ८४-८५

३०

रचना की होगी । एक अन्य तथ्य यह भी है कि इन नाटकों में माधवदेव के अन्य नाटकों के समान नान्दी श्लोक या अन्य संस्कृत के श्लोक तथा भाषा की रूप-रचना विद्यमान नहीं है । अतएव, उपर्युक्त कारणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक शरण सिद्धान्त के किसी विरोधीने शंकरदेव पर कीचड़ उछालने के लिये माधवदेव के नाम से उक्त नाटकों की रचना कर दी होगी ।

(३) गोपाल आटा ------ इन्होंने माधवदेव से दीक्षा लेकर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया । कालान्तर में माधवदेव द्वारा नियुक्त बारह धर्माचार्यों में इनको प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ । कहा जाता है कि आसाम के वैष्णव धर्म में इन्होंने 'कलाकार सत्र' और 'कला संहति' नामक दो संस्थाओं की स्थापना की । इन्होंने 'जन्म यात्रा' और 'उद्धव सम्वाद' नामक दो नाटकों की रचना प्रस्तुत की ।

(४) रामचन्द्र ठाकुर ------- ये भी माधवदेव के ही शिष्य थे तथा उनकी आज्ञा से इन्होंने 'शंकर चरित' की रचना की । अपने सिद्धान्त के आधार पर इन्होंने 'शंकर-माधव सम्वाद' भी लिखा । 'कंस वध' नामक एक ही नाटक इन के नाम पर उपलब्ध है जिसमें शंकरदेव की महिमाओं को उद्धृत किया गया है ।

इन नाट्यकारों के अतिरिक्त द्विज भूषणने 'अजामिल उपाख्यान' तथा दैत्यारि ठाकुरने 'नृसिंह यात्रा' और 'स्यमन्त हरण' नाटकों की रचना प्रस्तुत की ।

यह लक्ष्य किया जा चुका है कि इन नाट्यकारों का मुख्य उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करना था । अतएव भागवत् पुराण या अन्य पुराणों के उन्हीं प्रसंगों को ग्रहण किया गया है जिनके माध्यम से सरलता और स्वाभाविकता के साथ जन-हृदय में भक्ति-भावना का उद्रेक संभव हो ।

३१

जिन नाटकों में प्रेम, वीर, या वात्सल्य भाव हैं भी, वे भक्ति रस के ही सहायक हैं, अर्थात् उन भावों का लक्ष्य भक्तिरस को ही जागृत करना है । इन नाटकों में कथानक का संगठन, चरित्रों का क्रिया-कलाप, कथोपकथन, नृत्य और संगीत आदि तत्व इस रूप में प्रस्तुत किये गये हैं जिससे सामाजिकों के अन्त:करण में रागात्मिका वृत्ति और श्रद्धा ही उद्बुद्ध होती है । शंकरदेव रचित पत्नी प्रसाद से उपर्युक्त मत की पुष्टि हो जाती है । भागवत् के इस लघु प्रसंग को नाटकीय रूप देकर रागानुगा भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास किया गया है । पूर्ववर्ती विवेचन में यह दृष्टिगत किया जा चुका है कि कोरा कर्मकाण्ड और यज्ञादि में निरीह पशुओं की हत्या से शंकरदेव का हृदय किस प्रकार उद्वेलित हो जाया करता था । उक्त नाटक में ब्राह्मणों एवं उनकी पत्नियों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि ईश्वर की प्राप्ति केवल श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से हो सकती है, मिथ्याडम्बर और अहम् भाव पर आधारित कर्मकाण्ड पर नहीं । यही सिद्धान्त और इसका प्रचार इस वैष्णव भक्ति आन्दोलन प्रधान उद्देश्य था । अतएव इन नाट्यकारोंने अपने सिद्धान्त के अनुरूप ही कथानकों का चयन किया है ।

आसाम के नाटकों के सम्बन्ध में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि शंकरदेव और उनके परवर्ती वैष्णव नाट्यकार मूलत: एक उपदेशक और प्रचारक हैं, इसके पश्चात् ही वे एक नाट्यकार या कलाकार के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हो पाते हैं । यही कारण है कि एक निर्धारित सीमा और रूप-रेखा के अन्तर्गत ही इन नाटकों की कथा-वस्तु, शैली और चरित्रगत विशेषताओं का निदर्शन किया गया है । अंकिया नाट के अध्ययन से यह भी स्पष्टत: लक्षित होता है कि इनका कथानक प्राय: पूर्व- निश्चित् और नियोजित योजना के आधार पर ही अग्रसर होता है जिसके कारण इन नाटकों में कलात्मकता के स्थान पर प्रचारात्मक तत्व ही अधिक उभड़ आया है ।

३२

इन में नाटकीय तत्वों पर उतना बल नहीं दिया गया है जितना कि अपने सिद्धान्त और भक्ति के प्रसार पर । एक और भी तथ्य है कि अंकिया नाट में विभिन्न नाट्य-शैलियों का संमिश्रण है । अतएव उपर्युक्त कारणों से इन नाटकों की नाट्य शास्त्रीय अथवा किसी विशेष जन-नाट्य शैली पर ही समीक्षा नहीं प्रस्तुत की जा सकती । देखना यह चाहिये कि ⊗ किस सीमा तक करते हैं । इस दृष्टि से देखने पर ये नाटक केवल उस समय में ही नहीं अपितु, संस्कृति एवं परम्परागत निधि की रक्षा के कारण, आज भी सफल हैं ।

शंकरदेव आगामी अंकिया नाट के पुरष्कर्ता हैं, अतएव उन्होंने जिस शैली का निर्माण किया उसी का अनुकरण परवर्ती नाट्यकारोंने भी किया है । "इन्होंने संस्कृत के साथ जन-भाषा, संगीतमय पद्यों के साथ परिमार्जित गद्य, शास्त्रीय नाट्य विधान के साथ लोक-नाट्यशैली, विद्वन्मंडली के साथ अशिक्षित जन समुदाय का भी सदा ध्यान रखा । दोनों पद्धतियों के सामंजस्य से इन्होंने नाट्य-साहित्य का एक नया रूप निर्मित किया । अंकिया नाटकों की अपनी स्वतंत्र सत्ता है, वे संस्कृत, प्राकृत या अन्य किसी नाट्य-परंपरा का अनुसरण नहीं करते । नाटक जनबोली में रचे गये हैं, इस जन-बोली में वृज से आसाम तक की प्रचलित जन-भाषा का समावेश पाया जाता है । इसकी विशेषता यह है कि इस में लचीलापन, ध्वन्यात्मक माधुर्य, अपभ्रंश की ओजस्विता आदि गुण स्वाभाविक रीति से पाए जाते हैं और इन सबके परिणाम स्वरूप प्रगीत और पद्यात्मक नाटक का आभास होता है ।" १

---

१. नाट्य समीक्षा - पृ. ६३

⊗ जिन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर इनकी रचना हुई, उनकी पूर्ति ये—

शंकरदेवने जन-बोली को अपना कर वास्तविक रूप में एक साहसिक कार्य किया । पन्द्रहवीं शताब्दी की भाषा के गद्यात्मक रूप में भी विचार-प्रदर्शन तथा सूक्ष्मतम मनोभावों को व्यक्त करने की कितनी क्षमता विद्यमान थी, यह शंकरदेव की भाषा से भली भांति जाना जा सकता है । इन नाटकों ने, आपद्काल में पुराणों की कथाओं को सरल-दैनन्दिन जन-बोली में गद्य-पद्य के द्वारा उन्हें अभिनेय बनाकर तथा जन-सामान्य की अभिरूचि का परिमार्जन और परिष्कार कर जन-कल्याण का दुष्कर कार्य सम्पादन किया, अतएव इन नाटकों को हमारी सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने का श्रेय अनिवार्य रूप से प्राप्त है ।

---000---